IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

वर्तमान में नाट्यशास्त्र की उपयोगिता : वादन, नृत्य तथा नाट्य के संदर्भ में

Dr. Akashman
Department Of Tabla, Amity School of Performing Arts
Amity University, Noida, U.P

सार– नाट्यशास्त्र भारतीय संगीत के आधार ग्रन्थ तथा पंचमवेद के रूप में स्वीकारा जाता है। इसी संदर्भ में नाट्यशास्त्र की वर्तमान संगीत में क्या उपयोगिता है यह जानना भी परम आवश्यक है, क्योंकि शास्त्रों हमारी धरोहर है जिस कारण उनका अध्ययन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ज्ञान जिज्ञासा को पूर्ण भी करता है और अतीत की खोज़ें नवीन शोधों का अधार बनती है। इसी संदर्भ में वाद्य, नृत्य तथा नाट्य के संदर्भ में उपयोगिता का विश्लेषण किया गया है।

भारतीय संस्कृति का विश्व में प्राचीनतम स्थान है, जो युगों के साथ निरन्तर परिपक्व होती जा रही है। सभ्यता और संस्कृति की परिपक्व होने व प्राचीन होने का ज्ञान ग्रन्थ, अभिलेखों व शिलालेखों आदि आधार पर ही होता है। इसी क्रम में भरत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र द्वारा संगीत व नाट्य के आरम्भिक स्वरूप का पता चलता है। नाट्यशास्त्र के रचना काल के विषय में लेखक द्वारा अपने पहले के शोत्रपत्र ''नाट्यशास्त्र का रचनाकाल'' में प्रकाश ड़ाला गया है। लेखक की रूचि प्राचीन ग्रन्थों तथा नाट्यशास्त्र में मुख्य रूप से है, क्योंकि नाट्यशास्त्र पर जितना अधिक मनन किया जाता है उतनें ही अधिक नवीन ज्ञान की प्राप्ती होती है। इसी प्रकार वाद्य, नृत्य तथा नाट्य के संदर्भ में नाट्यशास्त्र की वर्तमान में उपयोगिता को जनने व समझने का प्रयास किया जा रहा है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के इतिहास में वाद्यों का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। आदिकाल से ही संगीत मानव मन–मस्तिष्क के भावों की अभिव्यक्ति को प्रकट करने का माध्यम रहा है। इन्हीं भावों को व्यक्त करने हेतु संगीत का उद्भव विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के माध्यम से हुआ और इन्हीं ध्वनियों के आधार पर वाद्य यंत्रों की उत्पत्ति आवश्यकतानुसार होती गयी। वाद्यों का सर्वप्रथम वर्णन नाट्यशास्त्र के 28वें अध्याय के अर्न्तगत प्राप्त होता है। इसी नाट्य की पूर्णतः व इसकी वृद्धि हेतु भरत मुनि ने गीत तथा वाद्य का एक साथ प्रयोग ''गान्धर्व'' (संगीत) का सहारा लिया। नाट्य के अर्न्तगत रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाने वाले हाव–भावों की अभिव्यक्ति हेतु गीत तथा वाद्य अति आवश्यक थे। नाट्यशास्त्र के टीकाकार

अभिनव गुप्त द्वारा अभिनव भारती में भी यह कहा गया है कि गायन तथा वादन (गान्धर्व) के उचित प्रयोग से नाट्य की सफल योजना सम्भव है।[(1)]

नाट्यशास्त्र के अर्न्तगत संगीत(गान्धर्व) का स्पष्ट वर्णन न करते हुए, नाट्य के अर्न्तगत किया गया है। नाट्यशास्त्र में नाट्य व अभिनय को प्रधान अंग मानकर उसके सहायक के रूप में गान्धर्व (संगीत) को स्वीकारा है। इस कारण भरत मुनि द्वारा नाट्य व गान्धर्व को एक–दूसरे का पूरक माना गया है। गान्धर्व गीत तथा वाद्य दोनों के समान प्रयोग से निर्मित हुआ है। गान्धर्व का अभिप्राय स्वर तथा लय दोनों है। स्वर और ताल को भिन्न–भिन्न शब्दों से व्यक्त करने के स्थान पर दोनों के संयुक्त शब्द के रूप में गान्धर्व शब्द का प्रयोग भरत मुनि द्वारा किया। इसके विषय में अभिनव गुप्त की टीका में कहा है कि

सिद्धि स्वरास्तथातोद्य गांन रङ्ग च संग्रहः इत्युक्तः।[(2)]

अर्थात्– भरत मुनि द्वारा स्वर तथा ताल के लिए अतोद्य विधान का वर्णन किया गया है। भरत मुनि द्वारा वर्णित अतोद्य शब्द का यदि विवेचन किया जाए तो अवनद्ध में ''आ'' उपसर्ग से तुद्ध धातु के प्रयोग से बना है। जिसका अर्थ है अंगुली, गज, मिजराब या किसी दों वस्तुओं द्वारा टकराव करने पर ध्वनि उत्पन्न करने का जो आधार होता है। वह आतोद्य कहलाता है। इस प्रकार देखा जाए, तो भरत मुनि ने द्वारा वर्णित आतोद्य शब्द को वर्तमान संगीत में ''वाद्य'' को समान अर्थ से युक्त कर सकते है। भरत मुनि ने नाट्यशात्र के अट्ठाइसवें अध्याय में तत्, अवनद्ध घन और सुषिर वाद्यों का लक्षणों को बतातें हुए, इन्हें चार प्रकार के आतोद्य कहे है।–

ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोधं लक्षणान्वितम्।।[(3)]

अर्थात्– भरत मुनि ने वर्णन किया है, कि इन चार भागों में तत्, अवनद्ध, घन तथा सुषिर। अतः इन्हीं वाद्यों के नियम तथा उनका प्रयोग संबधी वर्णन ही भरत मुनि ने आतोद्य–विधि कही है। भरत मुनि द्वारा वर्णित इस ''आतोद्य–विधान'' का आधार लेकर अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र की टीका अभिनव भारती में आतोद्य को स्वर तथा ताल वाद्यों में वर्गीकृत किया है। उन्होनें भरत के चतुविर्धि स्थान पर वाद्यों को ततातोद्य और अवनद्ध इन दो भागों का वर्णन किया है। ततातोद्य के अर्न्तगत सभी प्रकार के स्वर वाद्य तथा अवनद्ध के अर्न्तगत सभी प्रकार के ताल वाद्यों का वर्णन किया गया है।[(4)] आधुनिक समय में संगीत के विषय में देखा जाए तो यह प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिपात होता है कि, भरत मुनि द्वारा वर्णित आतोद्य विधान वर्तमान संगीत में पूर्ण रूप से मान्य है।

---

(1) अभिनव गुप्त/अभिनव भारती टीका भरत–नाट्यशास्त्र/अध्याय–28/श्लोक–433/पृ0–398
(2) अभिनव गुप्त/अभिनव भारती टीका भरत–नाट्यशास्त्र/अध्याय–28/पृ0–1
(3) बाबूलाल शुक्ल शास्त्री,(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्र/अध्याय– 32/श्लोक–29
(4) अभिनव गुप्त/अभिनव भारती टीका भरत–नाट्यशास्त्र/अध्याय–28/पृ0–2 (सुषिरस्यस्वरात्म कत्वेऽपित दवन्तरतस्यान किधानमितिने)

भरत काल से लेकर वर्तमान युग में आते–आते संगीत में कई प्रकार से संशोधन आवश्यकतानुसार होते रहे है। जिनमें कई देशी–विदेशी जातियों का प्रभाव उनकी संस्कृति के अनुकूल होता गया, परन्तु संगीत की आधारभूत सरंचना वर्तमान में भी भरत की परम्परा के अनुसार ही चलती आ रही है। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि संगीत शब्द भरत के गान्धर्व का ही अधुनिक नाम है, जो संगीत रत्नाकर काल से प्रचलन में आया। डॉ0 मुकुन्द लाट द्वारा भी इस तथ्य को स्वीकारा गया है, परन्तु भरत द्वारा गान्धर्व को नाट्य का अंग माना और गान्धर्व तथा नाट्य एक साथ प्रयोग किया। जब भरत द्वारा गान्धर्व को नाट्य से अलग किया गया, तब गान्धर्व शब्द का प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य तीनों के सम्बन्ध में सम्बोधित किया। संगीत रत्नाकर में पं0 शारंगदेव द्वारा–

''गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्छयते।।[5]

इस प्रकार वर्णन करते हुए, गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों के सम्मिलित रूप को संगीत माना है। अतएव कहा जा सकता है कि गान्धर्व का स्वतन्त्र विकास होने के साथ ही रत्नाकर काल से गान्धर्व शब्द के स्थान पर ''संगीत'' शब्द का प्रचलन होने लगा। आधुनिक संगीत की भाँति ही भरत मुनि द्वारा वर्णित गान्धर्व में भी गायन का मुख्य तथा प्रथम स्थान दिया गया है, जिसका विवेचन भरत मुनि ने किया है। भरत मुनि ने स्वर की उत्पत्ति मानव कंठ तथा वंशी के द्वारा मानी है। और इसे ''तन्त्रीकृकतातोद्य''[6]कहा है।

गान्धर्वमिति तज्ज्ञेयं स्वरतालपदाश्रयं।।[7]

इसी प्रकार वर्तमान में भी गायन को उत्कृष्ट स्थान दे समस्त वाद्यों को उसके आश्रित माना है। भरत मुनि ने स्वर तथा ताल के अर्थ के प्रयोग में आतोद्य शब्द को कहा है। जो आज भी वाद्य या शब्द से संबोधित किए जाते है। नाट्यशास्त्र काल में जिस प्रकार से नाट्य के समय अलग–अलग वाद्यों से नृत्य, नाट्य में सौन्दर्य तथा रस की प्रधानता उत्पन्न करने हेतु पुष्कर, वीणा, वंशी आदि सभी वाद्यों का एक साथ वादन किया जाता था।

रसभावे प्रयोगं तुज्ञात्वा योज्यं विधानतः।[8]

उसी प्रकार आज भी सभी वाद्यों का एक साथ वादन किया जाता है। जिसे वृन्दवादन(Orchestra) शब्द से संबोधित किया जाता है। इसी तरह से एकल वादन का भी प्रचलन उस समय था । जब नाट्य प्रयोग में खाली समय भरने हेतु एकल वादन भरत काल में भी किया जाता था। नाट्यशास्त्र काल में भी गीत तथा

(5) चौधरी सुभद्रा(अनुवाद)/संगीत रत्नाकर/श्लोक–21/पृ0–12
(6) अभिनव गुप्त/अभिनव भारती टीका भरत–नाट्यशास्त्र/अध्याय–28/पृ0–8
(7) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत–नाट्यशास्त्र/अध्याय– 28/श्लोक–8
(8) शुक्ल शास्त्री, बाबूलाल(अनुवाद)/भरत/नाट्यशास्त्र/अध्याय–33/श्लोक–17

वाद्यों का उपर्युक्त प्रचार था तथा गीत वाद्य (गान्धर्व) का वर्णन नाट्य के अंग के रूप में प्रचलित था। इसी कारण वर्तमान संगीत के परिपेक्ष्य में भी यही नियम स्वीकार किए जाते है।

इसी प्रकार नृत्य के विषय में कहा है कि गायन तथा वादन के पश्चात् संगीत में प्रयुक्त होने वाली अन्य विधा (नृत्य) को भरत मुनि द्वारा महत्वपूर्ण कहा गया है। नृत्य को नाटक का ही एक संस्कार कहा है, जिसके द्वारा नाट्य में श्रंगार भाव का सृजन होता है। नृत्य की शिक्षा शिवजी की आज्ञा द्वारा भरत मुनि ने अपने नाट्य प्रयोग में नृत्य को एक विशेष स्थान दिया। संध्याकाल में जब शिवजी अपनी मस्ती में नृत्य करते थे, उस समय भगवान शिवजी द्वारा प्रयोग किए गए करण, अंगहार आदि को शिवजी के गण तण्डु मुनि द्वारा इन सभी अंगहारों और करणों आदि को संग्रहित कर तथा शास्त्रबद्ध किया गया, बाद में शिवजी की आज्ञा का पालन करते हुए, इन सब की शिक्षा तण्डु मुनि ने भरत को दी। इस तरह से सर्वप्रथम शिवजी का नृत्य तण्डु मुनि द्वारा शास्त्रबद्ध करने पर तांडव कहा गया। यही वैचारिक विवरण भारतीय नृत्य शैलियों का आधार है। प्राचीन शास्त्रों के अंतर्गत नटन या नर्तन कला के तीन भेद कहे गए है, नाट्य, नृत तथा नृत्य। इन तीनों को नाट्य तथा नृत की मुख्य कलाएं कही गई है। नाट्यशास्त्र में भरत मनि द्वारा नृत तथा नृत्य इन दोनों कलाओं का ही वर्णन किया गया है तथा शिवजी के तांडव को नृत की संज्ञा दी गई है।

संगीत की विधा में नृत्त, नृत्य व नाट्य से जुड़े व्यक्ति को नट की संज्ञा दी जाती है। उत्तर वैदिक काल में नृतकों को शैलुष नाम से संबोधित किया जाता था। भरतमुनि के समय नटों को कुशीलव कहा जाता था। भरत मुनि के पूर्व भी कुशाशव व शिलालीन नामक दो नट संप्रदाय की चर्चा पाणिनी के अष्टाध्यायी में भी प्राप्त होती है। जिनका वर्णन नाट्यशास्त्र में भरत मनि द्वारा किया गया है।

जो किंकिणी अर्थात् घुंघरू वाद्य का ज्ञाता, विकृत नाटककारों के मध्य रहने वाला तथा सभी रागों का ज्ञाता (मर्मज्ञ) वह उसे चारण नाम से संबोधित किया जाता है। किंकिणी शब्द का अर्थ है, घुंघुरू वाद्य से है, जो ताल देने का कार्य करता है। प्रो० आर० बी० जागीरदार ने इन चारणों को उत्तर वैदिक काल में मागधों से संबोधित किया है। कुशीलव, चारणों तथा भांटो इन सभी परंपराओं को एकत्रित कर कथक नृत्य की रचना हुई। भारतीय शास्त्रीय संगीत के विधा 'नृत्य' में कथक का सर्वोपरि स्थान है। तांडव लास्य के पश्चात् सभी प्रयुक्त होने वाले कुशीलव, चारण आदि सभी से स्वतंत्र नृत्य शैली का विकास हुआ, जो समय के के साथ साथ होने वाले परिवर्तनों को अपने में समाहित करता गया, जिसमें तांडव की चारी लास्य के अंगहार व देसी नृत्य के सभी भाव आदि का उचित सममिश्रण इस नृत्य में है। कथक लगभग सभी राज्यों में प्रयुक्त होने वाली नृत्य शैली है, परंतु इसका विवेचन सदैव विवादों में रहा है। करण कों भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्र में वर्णन किया गया है, कि नृत्य अंगहारों द्वारा निष्पन्न होने वाला तथा कारणों पर आश्रित है। हाथ और पैर के एक साथ समायोजन को नृत्य में करण कहा जाता है। वर्तमान कत्थक नृत्य के हस्तक प्रकार को करण से मिलता–जुलता कह सकते है। भरतनाट्यम शैली में इन हस्तक (करणों) को और

आडूब कहा जाता है। भरत मुनि ने नृत्य में दूसरा तत्व अंगहार कहा है, जो करणों के योग से बनता है। मुख्यता अंगहार का अर्थ होता है, शरीर का हलन चलन यह अंगहार जिस प्रकार होता है, उसी तरह से अवनद्ध वाद्यों पर उसी लय अनुसार ताल प्रस्तुत किया जाता है। वर्तमान में भी नृत्य में भी अंगहारों का प्रयोग होता है क्योंकि बिना हलन चलन के नृत्य संभव नहीं है। चारी नृत्य ने पाद के रख–रखाव व उठान को चारी कहा जाता है अर्थात पद संचलान पाद है, जो चारी के अंतर्गत समझना चाहिए। वर्तमान कथक नृत्य में यह तत्कार के समान प्रतीत होता है। नाट्यशास्त्र में दो प्रकार की चारियों का वर्णन है– आकाशीचारी और भूमिचारी, तथा दोनों के 16–16 भेंद बताए हैं। वर्तमान में यदि देखा जाए तो चारी का ही वर्तमान नृत्य में प्रयोग होने वाला पाद क्रम तत्कार है, जो कथक नृत्य का आधार है।

इसी प्रकार पिंडीबदं का वर्णन प्राप्त होता है कि पिंडीबंद आज प्रयोग होता है। नाट्यशास्त्र के काल से लेकर आज तक इसका प्रयोग हो रहा है, जिसमें नृतकों का समूह मिलकर कभी मयूर, कभी रथ, कभी गणेश जी आदि का स्वरूप प्रस्तुत करते है। इसमें नृतक द्वारा गणेश जी की सूड तो कोई कान आदि का स्वरूप लेता है। इसका सादृश्य उदाहरण हमें चल चित्रों में भी प्राप्त होता है जो नृत्य आधारित फिल्में बन रही हैं जैसे उदाहरण के तौर पर देखें तो ''ABCD-2'' का भी एक गाना है, जिसमें गणेश जी की वंदना को दिखाते हुए पिंडी बंधन किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि वर्तमान में भी पिण्डीबंद का प्रयोग हो रहा है। नृत्य में सुंदरता और रंजकता हेतु ताल द्वारा इस वृत का निर्माण करते हुए तोड़े या बंदिश की प्रस्तुति की जाती है।

इसी क्रम में नाट्य के संदर्भ में वर्णित किया है कि नाट्यशस्त्र मूलता नाटक का ग्रंथ है, नाट्य कला के विभिन्न पक्षों का संपूर्ण वर्णन इस ग्रंथ में प्राप्त होता है। भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्र में सर्वप्रथम प्रेक्षा ग्रह के लक्षण कहे हैं, जिसमें रंगमंच अर्थात नाट्य गृह का निर्माण विधि कही है। जिसमें नाट्यगृह की विधि के अनुसार भूमि विभाजित की जाती है। फिर उसमें आधारशिला रखी जाती है वर्तमान समय में भी जब नाट्य मंडप का निर्माण होता है, तो सबसे पहले उसमें भी भूमि का चयन किया जाता है कि कितने लोग नाटक देखने आने वाले हैं उसी के अनुसार किसी मैदान में नाटक प्रस्तुत करने के लिए भूमि का विभाजन किया जाता है। तत्पश्चात संगीत वाद्य के साथ वादन कर एक नाटक की भूमिका बनाई जाती है कि सबको पता चले कि नाटक होने वाला है उसके उपरांत उस स्थान पर हवन पूजन किया जाता है कि कोई बाधा उत्पन्न ना हो।

उसके लिए देवताओं की पूजा की जाती है, जिस तरह से नाट्यशास्त्र में भी रंग देवताओं की पूजा के विधान कहे हैं। वर्तमान समय में भी जब नाट्य मंडप का निर्माण होता है, फिर उसमें देवताओं का पूजा हवन किया जाता है। ध्यान से देखें तो मनुष्य का जीवन भी नाटक के अनुसार ही चलता है उसमें रोज कोई न कोई नया पात्र जुड़ता है। लोक व्यवहार में भी मनुष्य नाटक ही करते हुए, जीवन व्यतीत करते है। उसी तरह से जब मनुष्य अपने लिए नए घर का निर्माण करता है तो उसकी आधारशिला रखने के

पश्चात उसके निर्माण आदि के समय उसमें हवन पूजन करता है। जिस तरह से नाट्यशास्त्र में भी कहा गया है कि रंग देवताओं की पूजा में अन्य वाद्यों का वादन करना चाहिए, उसी तरह से वर्तमान समय में भी पूजा धूप, पुष्प आदि द्वारा की जाती है तथा अन्य वाद्य का वादन तथा गायन किया जाता है। उसके बाद नाद घोष करके कार्य संपन्न होता है। इसके बाद नाटक प्रस्तुत करने के लिए तैयारी की जाती है। नाटक से पहले जो कार्य होने चाहिए वह देखे जाते है, जिसे भरत मुनि द्वारा अपने नाट्यशास्त्र में पूर्व विधान कहा है। वर्तमान समय में भी जब मंच प्रस्तुती होती है तो सर्वप्रथम मंच पर पर्दा हटता है जिसमें भी अवनद्ध वाद्यों तथा अन्य संगीत वाद्यों का वादन होता है और गायक गायन प्रस्तुत करते हैं। यह सब हो जाने के बाद नाटक प्रस्तुत किया जाता है।

जिसमें सर्वप्रथम सभी वाद्यों का एक साथ वादन होता है। जिसे भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में कुतुप कहा है। नाट्यशास्त्र भरतमुनि ने कहा है कि जब कुतप वाद्यों की स्थापना हो जाए उसके बाद नृत्य की गीत तथा वीणा वादन के साथ और अवनद्ध वाद्यों पर ताल के साथ मंच पर प्रवेश करें। उस समय नृतकी के हाथ में पुष्पांजलि के लिए वैशाख स्थान रूचक के साथ प्रवेश करती है, उस समय विशुद्ध संगीत तथा जातियों सहित वाद्यों का वादन गीत के अनुकूल करते हुए करना चाहिए। वर्तमान समय में भी जब नृत्य प्रस्तुति होती है तब सर्वप्रथम वाद्य का वादन होता है, उसके पश्चात नृतक तथा नृतकी की मंच पर प्रवेश करते है जिसे आज कथक नृत्य में आमद या उठान कहते है उसके बाद भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में नाटक के लिए चारी विधान कहा है, जिसमें पात्रों के खड़े होने का विधान कहा है। वर्तमान समय में तो आज चलचित्र का चलन है जिसमें तकनीकों द्वारा सभी के रूप प्रस्तुत किया जाता है, परंतु कभी–कभी मंच पर देखने पर इन चारी का नाटक में आज भी प्रयोग दिखता है। नाटक में इन चारों को करते हुए गति का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जिसमें यह वर्णन होता है कि कौन सी किस पात्र की भूमिका में हो रही है। उसी तरह से उसकी गति तथा चारी की गति होती है अर्थात अगर कोई लंगड़े की भूमिका निभा रहा है, तो वह उसी गति में चारी में चलेगा तथा गति द्वारा अलग–अलग पात्रों की गति अर्थात चल का विस्तृत रूप से वर्णन किया जाता है। इसमें ताल गायन का महत्व बहुत अधिक है अर्थात जिस तरह से पात्र अपनी गति को प्रस्तुत करता है, उसी तरह से अवनद्ध वाद्य पर भी उसी गति के अनुकूल वादन ही किया जाता है।

निष्कर्ष– वर्तमान में सभी ग्रन्थ उतनें ही उपयोगी है जितना शरीर के लिए प्राण। प्राचीन ग्रन्थ ही वर्तमान की नींव है और नींव का ज्ञान जितना अधिक होगा इमारत उतनीं अधिक मजबूत होती जाएगीं। संगीत भी उसी प्रकार विकसित होता जाएगा जितना अधिक इतिहास जीवंत होता जाएगा। नाट्यशास्त्र को अस कारण ही अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है क्योंकि इसमें संगीत का समस्त सार निहित है। संगीत के प्रत्येक पक्ष को वर्तमान में भी यह महान ग्रन्थ अपने अन्दर समेटे है। इसे जितना अधिक अध्ययन करेंगें उतना अधिक संगीत की विधाओं का ज्ञान प्राप्त होता जाएगा और जो वर्तमान में भी प्रयोग किसी न किसी रूप में हो रहा है।

संदर्भिका–

1. अभिनव गुप्त / अभिनव भारती टीका भरत–नाट्यशास्त्र
2. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री,(अनुवाद) / भरत–नाट्यशास्त्र
3. चौधरी सुभद्रा(अनुवाद) / संगीत रत्नाकर